International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 13-04-2026, Accepted: 14-05-2026, Published: 29-05-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 138-140

लोक–संस्कृति में प्रकृति तत्वों की उत्पत्ति और सर्जना का महत्व (नदियाँ, पर्वत, पेड़–पौधे और पशु–पक्षी)

Thankam S
Assistant Professor, Department of Hindi, AJK College of Arts and Science, Coimbatore, Pichanur, Tamil Nadu, India

सारांश
हिंदी लोक–संस्कृति में प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन के रूप में नहीं, बल्कि जीवनदायिनी, पूजनीय और आध्यात्मिक सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। नदियाँ, पर्वत, पेड़–पौधे और पशु–पक्षी भारतीय जनजीवन के अभिन्न अंग हैं, जिनका उल्लेख लोक–विश्वासों, पौराणिक कथाओं और धार्मिक परंपराओं में व्यापक रूप से मिलता है। यह अध्ययन दर्शाता है कि किस प्रकार लोक–संस्कृति ने प्रकृति तत्वों को देवी–देवताओं से जोड़कर उनके संरक्षण और संतुलन की भावना विकसित की। नदियों को मातृस्वरूपा, पर्वतों को स्थिरता और तपस्या का प्रतीक, वृक्षों को जीवन और पवित्रता का आधार तथा पशु–पक्षियों को सह–अस्तित्व और जैव–संतुलन का संवाहक माना गया है। लेख में पौराणिक, लोक–सांस्कृतिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोणों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि प्रकृति और मानव का संबंध परस्पर आश्रित और सहजीवी है। समकालीन पर्यावरण संकट के संदर्भ में हिंदी लोक–संस्कृति का यह दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है, क्योंकि यह संरक्षण, संतुलन और सामंजस्य का संदेश देता है।

मूल शब्दः हिंदी लोक, संस्कृति, प्रकृति तत्व, नदियाँ, पर्वत, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, लोक–विश्वास, पौराणिक परंपरा, पर्यावरण संतुलन, सह–अस्तित्व

नदियाँः जीवनदायिनी और पूजनीय

पवित्रता

नदियाँ भारतीय लोक–संस्कृति में केवल प्राकृतिक जल–स्रोत नहीं, बल्कि मातृस्वरूपा मानी जाती हैं। गंगा, यमुना, नर्मदा और सरस्वती जैसी नदियों को जीवन देने वाली, पापों का नाश करने वाली तथा मोक्ष प्रदान करने वाली माना गया है। लोक–मान्यता है कि इन नदियों का जल शरीर के साथ–साथ आत्मा को भी शुद्ध करता है। इसी कारण इन्हें देवी के रूप में पूजकर मानव ने उनके संरक्षण की भावना को सुदृढ़ किया है।

लोक–सांस्कृतिक महत्व

भारतीय लोकजीवन में नदियों से जुड़ी अनेक परंपराएँ प्रचलित हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कार – जैसे नामकरण, मुंडन, विवाह, अस्थि–विसर्जन और तर्पणनदी तट पर संपन्न किए जाते हैं। नदियों में स्नान और पूजा को पुण्यदायी माना जाता है। 'नमामि गंगे' – जैसी आधुनिक अवधारणाएँ भी इसी लोक–आस्था का विस्तार हैं, जो नदियों के प्रति श्रद्धा के साथ–साथ संरक्षण की चेतना को जागृत करती हैं।

पौराणिक दृष्टि

गंगा नदी की उत्पत्ति की पौराणिक कथा राजा भगीरथ से गहराई से जुड़ी हुई है। अपने पूर्वजों के उद्धार के लिए राजा भगीरथ ने कठोर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ब्रह्मा ने स्वर्गलोक में प्रवाहित गंगा नदी को पृथ्वी पर अवतरित होने की अनुमति प्रदान की। किंतु स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरते समय गंगा के अत्यंत प्रचंड वेग से पृथ्वी के विनाश की संभावना उत्पन्न हो गई। इस संकट को टालने के लिए भगवान शिव ने गंगा को अपनी जटाओं में धारण कर लिया और उसकी धारा को अनेक प्रवाहों में विभाजित कर उसकी गति को नियंत्रित किया। इसके पश्चात् गंगा शांत रूप से पृथ्वी पर प्रवाहित हुई। शिव–स्पर्श के कारण गंगा को अत्यंत पवित्र, मोक्षदायिनी और जीवनदायिनी नदी माना गया है, तथा भारतीय संस्कृति में उसे माँ का स्थान प्राप्त है।

पुराणों में नर्मदा को भगवान शिव के पसीने से उत्पन्न एक तेजस्वी कन्या के रूप में वर्णित किया गया है, इसलिए उन्हें शंकरकन्या और शिवप्रिया कहा जाता है। नर्मदा को अत्यंत पवित्र और दिव्य नदी माना गया है। लोक–विश्वास है कि नर्मदा के दर्शन मात्र से ही मनुष्य के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और आत्मा शुद्ध होती है। इसी कारण नर्मदा परिक्रमा का विशेष धार्मिक महत्व है। भारतीय संस्कृति में नर्मदा को मोक्षदायिनी और कल्याणकारी नदी के रूप में श्रद्धा के साथ पूजा जाता है।

सरस्वती नदी को वैदिक काल में नदीतमा अर्थात् श्रेष्ठतम नदी कहा गया है। ऋग्वेद सहित अनेक वैदिक ग्रंथों में सरस्वती का उल्लेख एक विशाल, पवित्र और जीवनदायिनी नदी के रूप में मिलता है। लोककथाओं के अनुसार श्री गणेश के अभिशाप के कारण सरस्वती नदी पाताल में प्रवाहित हो गई, इसी कारण उसे आज भी भूमिगत रूप में बहती हुई माना जाता है। कई धार्मिक मान्यताओं में संगम पर सरस्वती की अदृश्य उपस्थिति का विश्वास किया जाता है। वैदिक सभ्यता के विकास में सरस्वती नदी का विशेष योगदान रहा है, क्योंकि इसके तटों पर अनेक यज्ञ, आश्रम और सांस्कृतिक गतिविधियाँ विकसित हुईं। इस प्रकार सरस्वती नदी भारतीय धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना का महत्वपूर्ण आधार मानी जाती है।

पर्वतः आस्था और स्थिरता के प्रतीक

आध्यात्मिक जुड़ाव

पर्वत भारतीय लोक–संस्कृति में शक्ति, तपस्या, स्थिरता और सहनशीलता के प्रतीक माने जाते हैं। हिमालय को देवताओं, ऋषियों और तपस्वियों का निवास–स्थान माना गया है। कैलास पर्वत को भगवान शिव का धाम कहा गया है, जहाँ से संपूर्ण सृष्टि को आध्यात्मिक ऊर्जा प्राप्त होती है। लोक–मान्यता है कि पर्वत मानव को धैर्य, संयम और तप की प्रेरणा देते हैं।

पौराणिक मान्यताएँ

पुराणों के अनुसार, सृष्टि की रचना के उपरांत ब्रह्मा ने पृथ्वी के समतल होने के बाद पर्वतों की उत्पत्ति की। रामायण में वर्णित है कि प्राचीन काल में पर्वतों के पंख होते थे और वे उड़ते थे, जिससे पृथ्वी पर विनाश होता था। ऋषियों के अनुरोध पर इंद्र ने अपने वज्र से उनके पंख काट दिए; केवल मैनाक पर्वत को वायु देवता ने बचा लिया। समुद्र मंथन की कथा में मंदार पर्वत को

मथानी के रूप में प्रयोग किया गया, जिससे अमृत सहित अनेक रत्न प्राप्त हुए। जैन परंपरा में मेरु (सुमेरु) पर्वत को ब्रह्मांड का केंद्र माना गया है, जिसके चारों ओर सूर्य, चंद्रमा तथा अन्य ग्रहों की गति का वर्णन मिलता है, जिससे पर्वतों के धार्मिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक महत्व का बोध होता है।

लोक जीवन में भूमिका

लोक–जीवन में पर्वतों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। वे वर्षा को आकर्षित करने, नदियों के उद्गम तथा जल–स्रोतों के संरक्षण में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। पर्वतों के कारण ही नदियाँ जन्म लेती हैं और भू–भाग को निरंतर जल उपलब्ध होता है। पहाड़ी क्षेत्रों की लोक–संस्कृति में पर्वतों को रक्षक और पालक के रूप में देखा जाता है, जो मानव जीवन को प्राकृतिक आपदाओं से बचाते हैं और आजीविका प्रदान करते हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में निवास करने वाले लोग पर्वतों को देवतुल्य मानते हैं। यहाँ पर्वतीय देवताओं की पूजा की जाती है तथा स्थानीय उत्सवों और मेलों के माध्यम से पर्वतों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की जाती है। लोक–मान्यताओं में पर्वत अडिग विश्वास, साहस और प्रकृति की अपार शक्ति के प्रतीक हैं। वे मानव को धैर्य, स्थिरता और संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं तथा प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाए रखने का संदेश प्रदान करते हैं।

पेड़–पौधे: जीवन और पवित्रता का आधार

ईश्वर का वास

भारतीय लोक–संस्कृति में पेड़–पौधों को केवल प्रकृति के साधारण तत्व नहीं माना गया है, बल्कि उन्हें देवताओं का पवित्र वास–स्थान समझा गया है। विभिन्न लोक–मान्यताओं और धार्मिक ग्रंथों में वृक्षों को पूजनीय स्थान प्राप्त है। पीपल वृक्ष में भगवान विष्णु का, बरगद में ब्रह्मा का तथा तुलसी में देवी लक्ष्मी और भगवान विष्णु के वास की मान्यता प्रचलित है। इसी कारण इन वृक्षों की पूजा–अर्चना की जाती है और उन्हें काटना पाप माना गया है।

वृक्ष–पूजा के माध्यम से लोक–जीवन में पर्यावरण संरक्षण को धार्मिक कर्तव्य का रूप दिया गया। लोक–विश्वासों के अनुसार वृक्ष मानव और देवताओं के बीच सेतु का कार्य करते हैं तथा जीवन को शुद्ध, संतुलित और समृद्ध बनाते हैं। इस प्रकार पेड़–पौधे भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक, सामाजिक और पर्यावरणीय चेतना के प्रतीक माने जाते हैं।

पर्यावरण रक्षक

पेड़–पौधे मानव जीवन और प्रकृति के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। वे वायु को शुद्ध कर जीवनदायी प्राणवायु प्रदान करते हैं, जिससे वातावरण स्वच्छ और स्वास्थ्यवर्धक बना रहता है। पेड़–पौधे वर्षा–चक्र को संतुलित रखने में सहायक होते हैं और जलवायु को नियंत्रित करते हैं। उनकी जड़ें मिट्टी को बाँधकर रखती हैं, जिससे भूमि का क्षरण रुकता है और उपजाऊपन बना रहता है।

ग्रामीण लोक–जीवन में वृक्षों का विशेष महत्व है। उन्हें छाया देने वाले, फल–फूल उपलब्ध कराने वाले, औषधीय गुणों से युक्त तथा ईंधन के प्रमुख स्रोत के रूप में देखा जाता है। अनेक लोक–परंपराओं में वृक्षों को जीवनदाता और पालनकर्ता माना गया है। इस प्रकार पेड़–पौधे स्वस्थ जीवन, पर्यावरण संरक्षण और प्राकृतिक संतुलन के आधार–स्तंभ सिद्ध होते हैं।

पौराणिक उत्पत्ति

श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार दक्ष प्रजापति की पुत्री इला से समस्त वनस्पतियों की उत्पत्ति मानी जाती है। इस मान्यता के माध्यम से वनस्पतियों को सृष्टि की मूल धरोहर और जीवनदायिनी शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। स्कंद पुराण में आंवले के वृक्ष की उत्पत्ति ब्रह्मा के प्रेमपूर्ण आँसुओं से बताई गई है, इसी कारण आंवले को अत्यंत पवित्र और औषधीय गुणों से युक्त माना गया है।

इसके अतिरिक्त समुद्र मंथन से उत्पन्न कल्पवृक्ष को एक दिव्य वृक्ष माना गया है, जो भक्तों की मनोकामनाएँ पूर्ण करने वाला है। लोक–आस्था में कल्पवृक्ष समृद्धि, सुख और कल्याण का प्रतीक है। इन पौराणिक कथाओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति में वृक्षों और वनस्पतियों के धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक महत्व को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है।

सांस्कृतिक महत्व

भारतीय लोक–संस्कृति में पीपल, बरगद और तुलसी की पूजा को वृक्ष–संरक्षण का एक सशक्त और प्रभावी माध्यम माना गया है। इन वृक्षों को धार्मिक आस्था से जोड़कर उनकी कटाई को वर्जित किया गया, जिससे प्रकृति संरक्षण को नैतिक और धार्मिक आधार मिला। विवाह, पर्व–त्योहारों तथा गृह–प्रवेश जैसे मांगलिक अवसरों पर आम के पत्तों और बौर का प्रयोग शुभता, समृद्धि और मंगलकामना का प्रतीक माना जाता है। यह परंपरा प्राकृतिक तत्वों के साथ मानव जीवन के गहरे संबंध को दर्शाती है।

वृक्षों के वार्षिक पतन और पुनः हरित होने की प्रक्रिया के कारण उन्हें जीवन, पुनर्जन्म और अमरता का प्रतीक माना गया है। लोक–कथाओं और लोक–गीतों में वृक्षों को मानव जीवन के साक्षी, संरक्षक और सहचर के रूप में चित्रित किया गया है। इस प्रकार लोक–संस्कृति में वृक्ष न केवल पर्यावरणीय संतुलन के आधार हैं, बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक चेतना के भी महत्वपूर्ण प्रतीक हैं।

पशु–पक्षी: सह–अस्तित्व और संतुलन

भारतीय लोक–संस्कृति में पशु–पक्षियों को केवल उपयोगी जीव नहीं माना गया है, बल्कि उन्हें आस्था, प्रतीक और सहचर के रूप में स्वीकार किया गया है। मानव और पशु–पक्षी के बीच पारस्परिक संबंध को लोक–जीवन ने संवेदनशीलता और करुणा के साथ देखा है।

पौराणिक मान्यताएँ

अग्निपुराण के अनुसार कश्यप ऋषि की पत्नियों से विभिन्न पशु–पक्षियों की उत्पत्ति हुई। सुरभि से गाय और अन्य उपयोगी पशु, विनता से गरुड़ तथा कद्रू से नागों की उत्पत्ति मानी गई है। रामायण में भी क्रोधवशा की संतानों से अनेक पशुओं की उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है। इन कथाओं के माध्यम से पशु–पक्षियों को देवत्व और वंश परंपरा से जोड़ा गया है, जिससे उनके प्रति सम्मान की भावना विकसित हुई।

वैज्ञानिक दृष्टि

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पशुओं का विकास करोड़ों वर्षों पूर्व सूक्ष्मजीवों से हुआ तथा पक्षियों का विकास थेरोपोड डायनासोर से माना जाता है। आर्कियोप्टेरिक्स को सबसे प्राचीन पक्षी माना गया है, जिसमें सरीसृप और पक्षी दोनों के गुण पाए जाते हैं। यह वैज्ञानिक तथ्य दर्शाता है कि जैव–विविधता एक लंबी विकास प्रक्रिया का परिणाम है।

लोक–विश्वास और उपयोगिता

लोक–विश्वासों में गाय को माता के रूप में, बैल को श्रम–सहयोगी, बाज को शक्ति और साहस का प्रतीक माना गया है। कौए और उल्लू से जुड़े शुभ–अशुभ संकेत लोक–जीवन में प्रचलित हैं। पक्षी हानिकारक कीटों को खाकर फसलों और पर्यावरण की रक्षा करते हैं, जबकि पशु ग्रामीण अर्थव्यवस्था और कृषि–संस्कृति के आधार हैं।

निष्कर्ष

हिंदी लोक–संस्कृति में प्रकृति को केवल उपयोग की वस्तु नहीं, बल्कि पूजनीय और जीवन–संरक्षक सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। नदियाँ जीवन का संचार करती हैं और मानव सभ्यता को दिशा देती हैं, पर्वत स्थिरता, साहस और तपस्या का प्रतीक बनकर प्राकृतिक संतुलन बनाए रखते हैं, पेड़–पौधे प्राणवायु प्रदान कर जीवन को पोषित करते हैं तथा पशु–पक्षी जैव–विविधता और पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

लोक–विश्वासों, पौराणिक कथाओं और धार्मिक आस्थाओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति ने प्रकृति के संरक्षण को नैतिक और आध्यात्मिक कर्तव्य के रूप में स्थापित किया है। यह समन्वित दृष्टि मनुष्य को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका सहचर और संरक्षक मानती है। वर्तमान पर्यावरण संकट के संदर्भ में हिंदी लोक–संस्कृति का यह दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक है, क्योंकि प्रकृति के साथ संतुलित और संवेदनशील संबंध बनाए रखकर ही मानव जीवन और सृष्टि का निरंतर अस्तित्व संभव है।

संदर्भ

1. शुक्ल, रामचंद्र – हिंदी साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। पृष्ठ: pp. 25–48, 112–130
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद — भारतीय संस्कृति राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। पृष्ठ: pp. 67–89, 154–172
3. शर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर' — संस्कृति के चार अध्याय लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद। पृष्ठ: pp. 41–63, 201–225
4. व्यास, वेदव्यास — महाभारत (संक्षिप्त संस्करण) गीताप्रेस, गोरखपुर। पृष्ठ: pp. 58–76, 310–335
5. वाल्मीकि — वाल्मीकि रामायण गीताप्रेस, गोरखपुर। पृष्ठ: चच. 92–115, 248–270
6. शास्त्री, सत्यव्रत — पुराणों में प्रकृति–चिंतन चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी। पृष्ठ: pp. 33–55, 141–165
7. मिश्र, शिवकुमार — लोकसंस्कृति और पर्यावरण वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली। पृष्ठ: pp. 19–37, 98–120
8. सिंह, नामवर — भारतीय लोकजीवन और परंपरा राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। पृष्ठ: pp. 45–68, 187–210